मन की धुलाई

विज्ञान ने जहाँ अनेक प्रकार के साधन मानव को दिए वहाँ धुलाई-सफाई के क्षेत्र में भी क्रांतिकारी साधन उपलब्ध कराए हैं। जंगलों को तुरंत साफ कर देने वाली, रास्तों को समतल और सुन्दर कर देने वाली मशीनरी के साथ-साथ कपड़ों, मकानों, वाहनों, गहनों की सफाई-धुलाई के लिए अनेक प्रकार के रासायनिक पदार्थ बाज़ार में उपलब्ध हैं। आधुनिक मानव सफाई के प्रति अधिक जागरूक भी है, सफाई का महत्त्व अच्छी तरह समझता भी है। सफाई का स्वास्थ्य से सीधा संबंध है। आवास, वस्त्र, तन, भोजन की स्वच्छता अनेक रोगों से बचाती है। साफ-सुथरा लिबास व्यक्ति के सभ्य और सुरुचिपूर्ण होने का प्रतीक है। इसलिए कहा जाता है, लिबास चाहे सस्ता हो पर स्वच्छ हो। लिबास पर लगी अस्वच्छता या दाग-धब्बों को मिटाने के लिए मानव पूरा ज़ोर लगाता है। बाज़ार से महंगे डिटर्जेन्ट खरीदता है। उनसे भी काम ना बने तो कई प्रकार के महंगे केमिकल्स खरीदता है। कपड़े का बारीकी से मुआयना करता है कि धुलाई के बाद कोई दाग रह तो नहीं गया। दागदार कपड़े को पहनकर भूलकर भी लोगों के बीच आना नहीं चाहता और यदि भूल से कभी ऐसा हो भी जाए तो उसका मन बेचैन हो उठता है, मेल-मिलाप की सारी खुशियाँ भूल वह उस दाग पर ही नज़रें गड़ाए रखता है कि यह मेरे लिबास पर लगा क्यों और अब उतरे कैसे? यदि नहीं उतरा तो मैं इस लिबास को ही फेंक दूँगा। ऐसी ही बेचैनी मकानों, गाड़ियों या अन्य उपभोग की वस्तुओं पर दरार, खरोंच आ जाने पर मानव महसूस करता है, शीघ्रातिशीघ्र उसे मिटाने की भरपूर कोशिश करता है।

सवाल यह है कि क्या केवल बाह्य जगत की बाह्य चीज़ों को धो-पोंछ लेने मात्र से, आवास-लिबास को चमका लेने मात्र से मानव जीवन की सच्ची खुशियाँ अर्जित की जा सकती हैं। बाह्य सफाई आवश्यक है पर उससे कई गुणा अधिक आवश्यक है, भीतर की सफाई – आत्मा के मन की, भावनाओं की, कल्पनाओं की और स्मृतियों की सफाई।

ज़रूरी है आंतरिक जगत का बेदाग होना

स्वच्छ आत्मा हीरे के समान होती है। उसमें से स्वत: मूल गुणों के प्रकंपन निरंतर वातावरण में फैलते रहते हैं। जैसे लाइट हाऊस लाइट बिखेरता है ऐसे ही बेदाग आत्मा शान्ति, सुख, प्रेम, पवित्रता, आनन्द, शक्ति की किरणें बिखेरती है। अत: कपड़ों को उलट-पलटकर देखने की तरह, प्रतिदिन अपने ही स्वरूप को हर पहलू से निहारना, उसकी पवित्रता को परखना और इस पवित्रता की वृद्धि के लिए योजना बनाना, बाह्य स्वच्छता से भी अधिक अनिवार्य है। बाह्य जगत, भीतर का ही प्रतिबिम्ब है। आंतरिक जगत के बेदाग हो जाने पर बाहर अपने आप सच्चाई, सफाई के कमल खिलने लगते हैं।

क्या मन के रोगों को पड़ा रहने दें?

यदि शरीर में छोटा-सा भी रोग हो जाए तो झट डॉक्टर के पास जाते हैं। ठीक कराने के लिए अधीर हो उठते हैं। यह ठीक भी है, शरीर सेवा का साधन है, इसे ठीक रखना हमारा कर्त्तव्य है परंतु शरीर फिर भी, पुरुष (आत्मा) का कुछ कार्यों का साथी है। परन्तु मन, बुद्धि, संस्कार – ये शक्तियाँ तो आत्मा की सदा की साथी हैं। अब यदि मन में ईर्ष्या, द्वेष, बदला, नफरत, लगाव, पक्षपात, महत्त्वाकांक्षा, कामना, तृष्णा का रोग हो तो क्या उसे पड़ा रहने दें? क्या उससे कोई तकलीफ नहीं होती?